आधुनिक युग में आदिवासी विमर्श : एक सामाजिक मुद्दा

डॉ0 राम सेवक यादव*

देश भर में फैले विभिन्न जनजातीय समूहो के मुद्दे समान हो सकते है। लेकिन उनके विभेद भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। जनजातीय आंदोलनों में से कई अधिकांश रूप से समय भारत की तथाकथित 'जनजातीय बेल्ट' में स्थित रहे हैं जैसे छोटानागपुर व संथाल परगना में स्थित संथाल हो ओरांव व मुंडा। नए गठित हुए झारखण्ड प्रदेश का मुख्य भाग इन्ही से बना है। हमारे लिए विभिन्न आंदोलनों के बारे में विस्तृत विवरण देना संभव नहीं है। हम उदाहरण के रूप में झारखण्ड की चर्चा करेंगे जहां जनजातीय आंदोलन का इतिहास सौ वर्ष पुराना है। हम पूर्वोत्तर राज्यों के जनजातीय आंदोलनों की विशिष्टताओं के बारे में भी संक्षिप्त में चर्चा करेंगे परंतु इनकी भी विस्तृत विवेचना संभव नहीं है क्योंकि एक ही क्षेत्र में जनजातीय आंदोलन के विभिन्न स्वरूप विद्यमान हो सकते है।

आदिवासी समस्या वर्तमान का सबसे ज्वलंत मुद्दा बन चुका है। यह स्वयं में इसलिए भी विशिष्ट है कि क्योंकि यह व्यवस्था में सुधार की नहीं बल्कि परिवर्तन की बात करता है। यह हाशिए में पड़े लोगों की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया है। इसमें यथास्थिति के खिलाफ संघर्ष दिखता है। सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं अन्य क्षेत्रों को अपने में समेटे हुए साहित्य में इसके स्वर अधिक मुखरित है। आदिवासी विमर्श आधुनिक युग में आदिवासियों की संवेदनात्मक चेतना का ही रूपायन है। देश में प्रगति का ढिंढोरा पीटे जाने के बावजूद आज भी आदिवासी पिछड़े इलाकों में अपना जीवन जीने को अभिशप्त है। उनके जीवन से संबंधित एवं उन्हें समझने की कोशिश साहित्य की सकारात्मक कोशिश मानी जा सकती है। यह भी विमर्श करने योग्य बात है कि साहित्य में अभी तक उनकी उपस्थिति दर्ज क्यों नहीं थी। कल तक उपेक्षित रहा आदिवासी समुदाय अब साहित्य की मुख्य धारा में दिखाई देने लगा है। इसके पीछे आदिवासियों के कठिन संघर्ष एवं अस्मिता की रक्षा के लिए आतुर रहने की प्रक्रिया को माना जा सकता है। वीरभारत तलवार आदिवासियों के प्रति हमारी सोच में बदलाव का आह्वान करते हुए कहते हैं, ''"हमें अपनी कूपमंडूकता से बाहर आना चाहिए। हम जिन समुदायों के साथ मिलकर एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं इन समुदायों के लोगों के मूल्यों के प्रति, उनकी संस्कृति के प्रति हमारी क्या मानसिकता है ?

समय–समय पर विभिन्न राजनीतिक तथा सांस्कृतिक हमलों का शिकार होते हुए भी इस आदिवासियों ने अपनी जातीय अस्मिता को सुरक्षित रखा है और वे अपनी मातृभूमि की गौरव–रक्षा के लिए हर हाल में समर्पित रहे हैं। लेकिन जाति व्यवस्था और धर्म–सम्प्रदाय किस तरह हमारे बीच टकराव और अलगाव पैदा करते हैं तथा उनमे भेद–भाव को जन्म देते हैं, इसका सबसे नृशंस उदाहरण सवर्ण वर्ग द्वारा आदिवासियों के साथ किया जा रहा शोषण है। इस संदर्भ में वीर भारत तलवार लिखते हैंए "आज झारखंड़ी संस्कृति के विकास की राह में सामाजिक दृष्टि से सबसे बड़ी बाधा है, बल्कि झारखंड़ की विभिन्न जातियों की जातीय पहचान को तोड़ने और विकृत करने तथा यहाँ की जातीय संस्कृति के महान जनतांत्रिक मूल्यों को नष्ट करने की मुख्य जिम्मेदारी भी इस ब्राह्मणवाद पर है। झारखंडी संस्कृति और ब्राह्मणवादी संस्कृति बुनियादी तौर पर एक दूसरे की विरोधी हैं।

आदिवासी समुदाय के लोग अपनी ऐसी ही परेशानी और अत्याचारों से पीड़ित होकर हथियार उठाने को मजबूर हो जाते हैं। उस दृश्य की कल्पना कीजिए, जब किसी के खेत पर कब्जा कर लिया जाए, उसकी भैंस को भी कोई हांक ले जाए, उसके ऊपर मुकदमा कर दिया जाय और उसके घर में खाने के लिए कुछ ना हो, तो वह व्यक्ति भला अच्छा कैसे सोच सकता है। इसी की परिणति है नक्सलवादी सशस्त्र आंदोलन। सदियों से दबे कुचले आदिवासी समुदाय ने वर्षों के शोषण, अत्याचार से त्रस्त होकर हथियार उठा लिए हैं और अब वे शासन सत्ता को चुनौती दे रहे हैं। यह दुखद है कि जिन

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, भाउ राव देवरस राजकीय पी.जी. कॉलेज, दुद्धी, सोनभद्र

आदिवासियों के पूर्वजों ने देश में सबसे पहले सन 1765 में अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाए थे, वे आज अपनी ही सरकार के खिलाफ अघोषित युद्ध लड़ रहे हैं।

बाजारवाद की सर्वाधिक मार भी आदिवासियों पर ही पड़ी है। बाजारवाद की संस्कृति एवं निजीकरण के दृष्परिणामों की आलोचना करते हुए प्रख्यात रचनाकार रमणिका गुप्ता लिखती हैं– 'निजीकरण ने बाजारवाद को बढ़ाया है आदिवासियों पर इसका दुष्प्रभाव पड़ा है। भूमण्डलीकरण की मुख्य समस्या है कि यह केवल पूँजी को देश से बाहर जाने देता, न कि श्रमिक वर्ग को। इसी के चलते बेरोजगारी की समस्या बढ़ती है। उनके पास जीविका का कोई विकल्प नहीं रहा, फलतः वे अपनी बात सुनाने के लिए बंदूक उठाते हैं। उनकी धरती में कोयला है–पर उन्हें कोयला चोर बनाया जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने राज्यों के निर्माण की जो प्रक्रिया प्रारंभ की उसने इस क्षेत्र के सभी प्रमुख पर्वतीय क्षेत्र के जिलों में अशांति की प्रवृति पैदा की। अपनी पृथक् पहचान तथा पारंपरिक स्वायत्तता के प्रति सचेत ये जातियां असम के प्रशासनिक तंत्र में सम्मिलित तंत्र में सम्मिलित किए जाने के बारे में अनिश्चित थीं। इस प्रकार इस क्षेत्र में सजातीयता का उदय जनजाति के एक सशक्त अज्ञात प्रणाली के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप विकसित हुई नवीन परिस्थिति का सामना करने का प्रत्युत्तर था। भारतीया मुख्य धारा से लंबे समय तक पृथक् रहने के कारण ये जनजातियां अपना स्वयं का विश्व–दर्शन तथा सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं को बहुत कम बाहरी प्रभाव से बचा पाए। जबकि पहले की अवस्था ने अलगाव की प्रवृत्ति दिखाई, यह प्रवृत्ति भारतीय सवंधिान के दायरे में ही स्वायतता की खोज द्वारा प्रस्थापित हो गई है।

एक मुख्य मुद्दा जो देश के विभिन्न भागों के जनजातिय आंदोलनों को जोड़ता है वह है जनजातीय लोगों का वन–भूमि से विस्थापन। इस अर्थ में पारिस्थितिकीय मुद्दे जनजातीय आंदोलन के केंन्द्र में हैं। लेकिन इसी प्रकार पहचान की सांस्कृतिक असमानता व विकास जैसे आर्थिक मुद्दे भी हैं। यह हमें पुनः भारत में पुराने तथा नए सामाजिक आंदोलन की अस्पष्टता के प्रश्न की ओर वापस ले जाता है। सक्रियता का यह काल सामाजिक आंदोलन नहीं था। इसका विरोध भी किया जा सकता था। यहॉ हम उन विशेषताओं का स्मरण करें जो सामाजिक आंदोलनों को चिन्हित करती है। इनमें संगठन विचारधारा, नेत्त्व, एक साझी समझ तथा उन मुद्दों पर परिवर्तन लाने का लक्ष्य था। सम्मिलित रूप से ये एक ऐसा वातावरण बनाने में सफल हुए जहां महिलाओं के मुद्दों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।

नक्सल आन्दोलन की हिंसक गतिविधियों ने अंततः आदिवासियों का ही नुकसान किया है क्योंकि विकास के जिन लाभों को अन्य भारतवासी सहजता से प्राप्त कर पा रहे हैं, आज आदिवासी उन सुविधाओं से वंचित हैं। और तो और ये नक्सली ही विकास के सरकारी प्रयासों में पलीता लगाकर अपना तथा अपने समुदाय का ही नुकसान कर रहे हैं। वर्तमान समय में यदि हम भारत के आदिवासियों का निरपेक्ष दृष्टि से विवेचन करने का प्रयास करें तो पाते हैं कि आदिवासियों का संकट बहुप्रचारित जल, जंगल और जमीन की आवश्यकताओं से कहीं बड़ा है। आज उन्हें इनके आगे जाकर स्वाभिमान, शैक्षणिक जागरूकता, सरकारी योजनाओं में भागीदारी, नौकरियों में हिस्सेदारी और उद्योग जगत में उनके उत्पादों की सही कीमत मिलने तथा उद्योगों का स्वामित्व हांसिल करने तक पहुंचने की ज़रूरत है।

सन्दर्भ सूत्र :

1. अमर उजाला (दैनिक) दिनांक 1 अप्रैल, 2011, दिल्ली, पृ0 1.
2. मजूमदार और मदान, सामाजिक मानवशास्त्र एक परिचय, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1957, पृ0 269.
3. तलवार, वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एक्टिविस्ट के नोट्स, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृ. 210।
4. 'बदलाव के लिए प्रतिबद्व है आदिवासी साहित्य' वरिष्ठ रचनाकार रमणिका गुप्ता का साक्षात्कार, कथाक्रम पत्रिका, अंक अक्टूबर–दिसम्बर–2011, पृ. 20
5. बिसारिया पुनीत, आदिवासी समाज :समस्या कहाँ है, से उद्धृत।
6. मुकर्जी, आर. एन., अग्रवाल, भरत, समाजशास्त्र, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, 2011. पृ0 22–23

●